PITh
11435

Chapter-8

अष्टम् अध्याय

उपसंहार

उपसंहार :-

जन-साधारण में एक मुहावरा-सा हो गया है । बात-बात में लोग कलियुग को कोसते हैं, उसकी भर्त्सना करते हैं । जिन्हें भारतीय संस्कृति और इतिहास की ए. बी. सी. डी. भी मालूम नहीं है, ऐसे लोग कई बार हमारे वर्तमान युग को, आधुनिक युग को गरियाने लगते हैं । कुछ भी बुरा होता है, अवांछित होता है, नैतिकता के मानदण्डों के विपरीत होता हे, तो हम लोग अपने युग को कोसने लगते हैं । पर हम भूल जाते हैं कि पहले ''कोम्युनिकेशन'' के इतने संसाधन नहीं थे, यातायात के साधन नहीं थे, अब तो दुनिया के किसी कोने में कुछ घटित होता है और पलक झपकते ही वह बात सबके सामने आ जाती है । पत्र-पत्रिकाएँ हैं, अखबार है, मीडिया है । अब सृष्टि को हम ''ग्लोबल-विलेज' कहते हैं । अन्यथा कोई काल अच्छा या बुरा नहीं होता, कोई धर्म अच्छा या बुरा नहीं होता, कोई देश, कोई संस्कृति, कोई समाज शत-प्रतिशत अच्छा या बुरा नहीं होता । हर युग-हर धर्म, हर संस्कृति, हर समाज, हर व्यक्ति में कुछ अच्छाइयाँ होती

हैं, तो कुछ बुराइयाँ होती हैं। कुछ श्रेष्ठताएँ होती हैं, तो कुछ क्षतियाँ होती हैं। कुछ शिखर होते हैं, तो कुछ खाइयाँ होती हैं। यह संसार, यह सृष्टि अपूर्ण है, कोई भी सम्पूर्ण नहीं है और यह अपूर्णता ही उसका सौन्दर्य है, यह अपूर्णता ही उसकी कर्म-प्रेरणा है, यहाँ उसके पुरुषार्थ, क्षमा कीजिए "मनुष्यार्थ" को एक निकष मिलता है।

तो हमारा यह वर्तमान युग, कलियुग भी, कला और विज्ञान और प्रौद्योगिकी का युग है। हमने अनेक शिखर सर किए हैं। ज्ञान-विज्ञान की ऊँचाइयों को छुआ है। हमारे आलोच्य लेखक शैलेश मटियानी से यदि पूछा जाए (खैर, अब तो उनका निधन हो गया है, पर इस बारे में उन्होंने अपनी कैफियत दर्ज करवायी है।) तो कहेंगे कि यह कलियुग का एक बहुत बड़ा गुण है कि उसमें श्रेष्ठ कर्मों का प्रतिपादन उच्च वर्ग-वर्ण लोगों की बपौती नहीं रह जाती, बल्कि यदि साधना हो, संकल्प हो और प्रतिभा हो तो जुआरी का बेटा और कसाई का भतीजा भी साहित्यकार बन सकता है। दया पवार, शरण कुमार लिंबाले (अक्करमाशी के लेखक), ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जोसेफ मेकवान (आंगळियात के लेखक) जैसे हाशिये में पड़े लोग अब लेखक और कवि हो सकते हैं। हम यह इसलिए कह रहे हैं कि हमारे आलोच्य लेखक शैलेश मटियानी इसी पृष्ठभूमि से आये हैं। हमारे संविधान के रचयिता डॉ. बाबासाहब आंबेडकर इसी कलियुग की देन हैं। हाँ, यह बात और है कि कुछ लोगों को यह बात आँख की किरकिरी की तरह खटक रही है और वे जब-तब उसे बदलने की बातें भी कर रहे हैं। 'मनु-संहिता' वाले "भीम-संहिता" को कैसे बर्दाश्त कर सकते हैं।

२४ अप्रैल २००१ में मटियानी जी का निधन हुआ और इधर हिन्दी के कई कथा-साहित्य के आलोचक मटियानी जी को एक महान कथाकार मानने लगे हैं। उनके निधन पर "पहाड़" पत्रिका का एक विशेषांक "शैलेश मटियानी के मायने" शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। मटियानी-साहित्य के अध्येताओं के लिए यह अंक विशेष रूप से संग्रहणीय है कहा जा सकता है।

गुजराती की एक पंक्ति है- ''काप्युं तोये वधी रह्युं छे व्याप एनो तो वधतो जाय।'' अर्थात् काटने पर भी वह निरंतर बढ़ रहा है। मटियानी जी के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ है। मृत्यु ने उनकी जीवन-रेखा को मानो काट डाला, पर उसके बाद भी उनका व्याप तो बढ़ता ही जा रहा है। राजेन्द्र यादव ने ''हंस'' में लिखा था कि मटियानी जी की कुछ कहानियों के एवज में वह अपना समग्र साहित्य न्यौछावर करने को तैयार हैं। मटियानी जी की गणना और तुलना अब विश्वस्तर के साहित्यकारों के साथ हो रही है। पहले प्रेमचंद की तुलना गोर्की के साथ होती रही है। ''प्रेमचन्द और और गोर्की'' नाम से डॉ. शचिरानी गुर्टू के संपादन में विविध लेखों की एक पुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी है। इधर मटियानी जी की तुलना भी गोर्की, चेखोव, ज्यांजेने आदि के साथ होने लगी है। इस प्रकार प्रेमचंद के बाद यह दूसरे लेखक हैंजो विश्व-साहित्य के ज्योतिर्धरों में देदीप्यमान हो रहे हैं। आधुनिक कथा-साहित्य के एक प्रमुख हस्ताक्षर तथा आधुनिक कथा-साहित्य के एक मर्मज्ञ सुधी आलोचक डॉ. पंकज बिष्ट उनको प्रेमचंद से ऊपर नहीं तो प्रेमचंद के बराबर के लेखक मानते हैं। शैलेश के लेखन का महत्व उस मूल यथार्थ में है जिसकी परंपरा डिकन्स, जोला, कुप्रिन और गोर्की से होती हुई प्रेमचंद, मण्टो और मटियानी तक जाती है।

बीट कवि एलन गिंस्बर्ग की लम्बी कविता ''हाउल'' की प्रथम पंक्ति है - ''I have sean the hart minds of my generation desfroyed by madness'' महाप्राण निराला की भाँति इस महान यथार्थवादी लेखक का जीवनांत भी विक्षिप्तावस्था की यंत्रणापूर्ण स्थितियों से गुजरा।

इसे जीवन की एक विडम्बना ही समझना चाहिए कि जीवन के आखिरी पड़ाव पर किसी व्यक्ति को ऐसे लोगों से जुड़ना पड़े जो उसके समूचे लेखन के विपरीत पड़ता है। मटियानी में, उनके चिंतनपरक लेखन में अनेक स्थानों पर अन्तर्विरोध मिलेंगे और यह दिक्कत ही बड़ी प्रतिभा के साथ है। वस्तुतः जिस यथार्थ की हम बात करते हैं, वह स्वयं भी अनेक प्रकार के अन्तर्विरोधों

से भरा है । वस्तुतः एक बहुत बड़ी प्रतिभा को हमने बलि पर चढ़ा दिया । प्रेमचंद के निधन पर टैगोर ने कहा था कि एक ही तो हीरा था हिन्दी वालों के पास, वो भी उन्होंने गँवा दिया । शैलेश के समय में टैगोर होते तो शायद शैलेश के लिए भी वह यही बात कह सकते थे ।

मटियानी जी के साहित्य के अनेक आयाम हैं । विपुल साहित्य की उन्होंने रचना की है । विभिन्न शैलियों को आत्मसात किया है । भाषा पर जबरदस्त प्रभुत्व है इनका । पर उतनी ही ज्यादा उपेक्षा उनकी हुई है । वे किसी प्रकार की खेमाबन्दी में नहीं मानते, फलतः शिविरधर्मी लोग हमेशा उन्हें नुकशान पहुँचाते रहे, उनकी उपेक्षा करते रहे । उनके प्रारंभिक दो-एक उपन्यासों के आधार पर उनको आंचलिकता के खाते में खतिया दिया गया । इधर दो-एक थीसिस देखने में आयी हैं जिनमें उनके तमाम-तमाम उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास करार दिया गया । हिन्दी कहानी के क्षेत्र में तो अपने आंदोलन ये शिविरधर्मी लोग चलाते रहे, और उन-उन की शिविरों में फिट न बैठने के कारण, उनके कहानी साहित्य की निरंतर उपेक्षा होती रही । इधर के आधुनिक कहानी-संग्रहों को उठा लीजिए, उनमें आपको प्रेमचंद मिलेंगे, जैनेन्द्र मिलेंगे, अज्ञेय मिलेंगे, यशपाल मिलेंगे, और भी कई लेखक मिलेंगे पर मटियानी जी एक सिरे से गायब मिलेंगे । राजेन्द्र यादव द्वारा संपादित ''एक दुनिया समानान्तर'' में कदाचित सर्वप्रथम उनकी ''प्रेतमुक्ति'' कहानी उपलब्ध होती है । राजेन्द्र यादव की भाँति मेरा अपना व्यक्तिगत अभिमत भी यही है कि मटियानी की कथात्मक कला बनिस्बत उपन्यास, कहानी में अधिक निखर कर आयी है ।

शैलेश मटियानी जी का साहित्य गुणवत्ता और प्रमाण उभय दृष्टि से विपुल और संपन्न है । उनके लगभग २८ कहानी-संग्रह,३० उपन्यास, ३ संस्मरणात्मक पुस्तक,, १३ विविध प्रकार की पुस्तकें, २ गाथाएँ, १६ बाल-साहित्य की किताबें, ७ लोककथा-संग्रह प्रकाशित हुए हैं । इसके अतिरिक्त ''विकल्प'' और ''जनपक्ष'' नामक दो पत्रिकाओं को भी वे चलाते रहे हैं ।

इनके संपादकीय भी चिंतनपरक एवं विचारोत्तेजक हैं। केवल लेखन पर ही उनकी आजीविका निर्भर थी, अतः उनकी कई-कई कहानियों को हम पुनः पुनः विविध संकलनों में देख सकते हैं। किन्तु उनकी अधिकांश कहानियाँ, लगभग ७० कहानियाँ, ''बर्फ की चट्टानें'' (बड़ा संकलन) और ''मेरी तैंतीस कहानियाँ'' में उपलब्ध हो जाती हैं।

हिन्दी क्षेत्र में मटियानी जी की उपेक्षा भले ही हुई हो, परंतु महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पारुकान्त देसाई ने मटियानी की प्रतिभा को भलीभाँति पहचाना था। इसे एक सुखद आश्चर्य ही समझना चाहिए कि मटियानी पर पी-एच.डी. रिसर्च वर्क गुजरात में सर्वप्रथम करने वाले सलीम वोरा एक प्रज्ञाचक्षु शोधछात्र थे और उन्होंने यह शोधकार्य देसाई साहब के मार्गदर्शन में संपन्न किया था। हिन्दी में शोधकार्य द्वारा पी-एच.डी. प्राप्त करने वाले यह प्रथम प्रज्ञाचक्षु थे, जिसके कारण तत्कालीन महामहिम राष्ट्रपति वेंकटरमण द्वारा उभय का सन्मान भी हुआ था। डॉ. देसाई साहब ने मटियानी के विविध पक्षों को लेकर और भी दो-एक शोधकार्य करवाए हैं। मेरा यह शोधकार्य शैलेश मटियानी जी की कहानियों पर है, किन्तु मैंने मटियानी जी की कहानियों का अध्ययन दलित, ईसाई और मुस्लिम संदर्भ के परिप्रेक्ष्य में किया है। इस दृष्टि से मटियानी जी की कहानियों का अध्ययन अद्यावधि हुआ नहीं है। मैंने अध्ययन की सुविधा हेतु अपने शोध-प्रबंध को आठ अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय ''विषय-प्रवेश'' का है। उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध भारतीय इतिहास में कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। यहीं से हमारे यहाँ नवजागरण की प्रक्रिया शुरू हुई जिसने अनेक सामाजिक-राजनीतिक समीकरण बदल डाले। मध्यवर्ग का उदय, औद्योगीकरण, नगरीकरण, अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार, मुद्रण कला का विकास, गद्य-विधा का प्रचार-प्रसार, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, ब्रह्मोसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी आदि सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं के

प्रादुर्भाव से भारत के सामाजिक-राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन में एक नयी चेतना का संचार हुआ। आधुनिकता के अग्रदूत राजा राममोहनराय, केशवचंद्र सेन, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, स्वामी दयानंद सरस्वती, महादेव गोविन्द रानडे, पंडिता रमाबाई, ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले, श्रीमती एनी बेसेन्ट, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, गोपाल कृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, डॉ. बाबा साहब आंबेडकर जैसे महानुभावों का आविर्भाव तथा फ्रांस की क्रान्ति, रूस की क्रान्ति, मार्क्स की विचारधारा, नारी-विमर्श तथा दलित-विमर्श जैसे वैचारिक प्रवाहों ने भारतीय चेतना को विकसित किया। शिक्षा के द्वार सबके लिए खुल गए। स्वाधीनता-संग्राम के कारण भारतीय राजनीतिक जीवन में नयी लहरें पैदा हुई। गद्य के विकास के कारण साहित्य का अवरुद्ध मार्ग अनेक नयी विधाओं के खुल गया। उपन्यास, कहानी, निबंध, लेख, आत्मकथा, जीवनकथा, संस्मरण, नाटक, एकांकी, रिपोर्ताज जैसी विधाएँ सामने आयीं। ये सब इस तथाकथित कलियुग में हुआ जिसका हम तहेदिल से स्वागत करते हैं।

इस अध्याय में हमने गद्य का विकास और कहानी विधा, कहानी : स्वरूप विवेचन, कहानी का अन्य साहित्य स्वरूपों से संबंध, कहानी की विकास यात्रा, मटियानी जी के कृतित्व काल का युगबोध, मटियानी जी का जीवन-संघर्ष जैसे मुद्दों की पड़ताल की है। इस अध्याय के विहंगावलोकन से हम कह सकते हैं कि गद्य के विकास के साथ हिन्दी कहानी विधा का भी विकास हुआ जिसका संबंध हमारे शोध-प्रबंध से है। जो कार्य गुजराती में नर्मद ने किया लगभग उसी प्रकार का कार्य हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने किया। कहानी का प्रारंभ भी भारतेन्दु युग से हुआ है। यद्यपि इसके पूर्व हमारे यहाँ कथा-साहित्य उपलब्ध होता था परन्तु उस कथा साहित्य में और इस आधुनिक कथा-साहित्य में वस्तु, शिल्प, चरित्र आदि अनेक दृष्टियों से गुणात्मक अंतर पाया जाता है। हिन्दी की प्रारंभिक कहानियों में ''इन्दुमती' (पं. किशोरीलाल गोस्वामी), ''दुलाईवाली'' (बंग महिला), ''ग्यारह वर्ष का समय'' (आचार्य

रामचंद्र शुक्ल), ''ग्राम'' (जयशंकर प्रसाद), ''प्लेग की चुडैल'' (लाला भगवानदीन), ''राखीबन्द भाई'' (वृंदावनलला वर्मा), ''कानों में कंगना'' (राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह) आदि की गणना कर सकते हैं, जो सन् १९०० से १९१३ तक में लिखी गई हैं। कहानी के विकास में ''सरस्वती'' तथा ''इन्दु'' जैसी पत्रिकाओं ने उस समय अपना विशेष योगदान दिया था। सन् १९१५ में प्रणीत कहानी ''उसने कहा था'' (पं. चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी') एक शकवर्ती प्रेम कहानी है जो प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि में लिखी गई है।

कहानी के इस प्रथम विकास के तबक्के के पश्चात् सन् १९१५ के दौर में सुदर्शन, कौशिक जी तथा प्रेमचंद जी की बृहदत्रयी यथार्थधर्मी समस्या-प्रयोजन-मूलक कहानी के नये आयामों को सर करती है। प्रेमचंद जी की चर्चित कहानियों में बलिदान, आत्माराम, बूढ़ी काकी, सवा सेर गेहूँ, शतरंज के खिलाड़ी, सुजान भगत, पूस की रात, सद्गति, नमक का दारोगा, ठाकुर का कुआँ, बड़े भाई साहब, नशा, बेटोंवाली विधवा, कफ़न आदि की परिगणना कर सकते हैं।

प्रेमचंद के उपरान्त हृदयेश, जयशंकर प्रसाद, जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, चन्दगुप्त विद्यालंकार,भगवती चरण वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', सियारामशरण गुप्त, भगवती प्रसाद बाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल आदि लेखक कहानी के विकास को आगे बढ़ाते हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी की त्रिपुटी मनोवैज्ञानिक कहानियों का सूत्रपात करते हैं, तो यशपाल कहानी में मार्क्सवादी जीवन-मूल्यों को उकेरते हैं। इस दौर में कुछ महिला लेखिकाएँ भी कहानी के क्षेत्र में पदार्पण करती हैं, जिनमें शिवरानी देवी, सुभद्रा कुमारी चौहान, कमला देवी चौधरानी, उषा देवी मित्रा, चन्द्र किरण सोनरिक्शा, चन्द्रवती जैन और होमवती आदि के नाम उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं।

कहानी को लेकर एक बात और हमारे सामने आती है और वह यह

कि हिन्दी की किसी भी साहित्य-विधा की तुलना में कहानी को लेकर सबसे ज्यादा आंदोलन चले हैं और कहानी के कई-कई प्रकार के नाम सामने आये हैं। इन सब आंदोलनों और फतवों से अलग रहने के कारण ही हमारे आलोच्य लेखक मटियानी जी की सर्वाधिक उपेक्षा हुई है, क्योंकि वह इन सब फतवों से दूर कहानी में सिर्फ "कहानीपन" को तलाश और तराश रहे थे। स्वतंत्रता के बाद की कहानी को कहानी-विकास की दृष्टि से अधिक-से-अधिक हम दो विभागों में रख सकते हैं- नयी कहानी और समकालीन कहानी। सन् १९५० के बाद की कहानी को नयी कहानी और पिछले पचीस-तीस साल की कहानी को समकालीन कहानी कहा जा सकता है।

प्रमुख और चर्चित नयी कहानियों में "डिप्टी कलेक्टरी" (अमरकान्त), "राजा निरबंसिया" (कमलेश्वर), "बादलों के घेरे" (कृष्णा सोबती), "गुलकी बन्नो" (धर्मवीर भारती), "रस-प्रिया" (रेणु), "चीफ की दावत" (भीष्म साहनी), "हंसा जाई अकेला" (मार्कण्डेय), "आर्द्रा" (मोहन राकेश), "वापसी" (उषा प्रियंवदा), "परिन्दे" (निर्मल वर्मा), "जहाँ लक्ष्मी कैद है" (राजेन्द्र यादव), "प्रेतमुक्ति" (शैलेश मटियानी) आदि की गणना कर सकते हैं।

नयी कहानी के बाद का कहानी पड़ाव "समकालीन कहानी" का है। समकालीन कहानीकारों में भीष्म साहनी, उषा प्रियंवदा, शैलेश मटियानी, मोहन राकेश, कमलेश्वर, रेणु, अमरकान्त, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, रमेश बक्षी, हरिशंकर परसाई, निर्मल वर्मा, चित्रामुदगल, जया जादवानी, संजय, उदय शर्मा, नासिरा शर्मा आदि की गणना कर सकते हैं।

मटियानी जी का कृतित्व सन् १९५० से प्रारंभ होकर सन् २००१ तक चला। २४ अप्रैल २००१ में उनका निधन हुआ। अतः उनके कृतित्व का युगबोध लगभग एक अर्द्धशती की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, नैतिक गतिविधियों को समेटता है। इस युगबोध के कच्चे माल को उन्होंने अपने संघर्षरत जीवन की तपिश में पकाया है और उसका परिपाक

है उनका साहित्य।

चूँकि हमारा अध्ययन दलित, मुस्लिम और ईसाई संदर्भ में मटियानी जी की कहानियों के संदर्भ में है, फलतः इस दूसरे अध्याय में हमने "दलित-विमर्श विषयक कतिपय अवधारणाओं" को लिया है। इसमें वर्णाश्रम-व्यवस्था में शूद्रों का स्थान , वर्ण-व्यवस्था के दोष, ब्राह्मणों के विशेषाधिकार, अस्पृश्यों के भीतर भी संस्तरण की शातिर योजना, अस्पृश्यता का प्रारंभ कब से ?, कोचीन की सरकारी रिपोर्ट,दलित-विमर्श यात्रा, दलितों पर थोपी गयी निर्योग्यताएँ, दलित-विमर्श को बढ़ाने वाले १९ वीं और २० वीं शताब्दी के नेता, डॉ. बाबा साहब आंबेडकर, आंबेडकर और मार्क्सवाद, दलित और हरिजन, अस्पृश्यता निवारण से संबंधित कार्य, सुधार-आंदोलन और गैर-सरकारी प्रयत्न, उसमें सवर्ण हिन्दुओं द्वारा चलाए गए आंदोलन, अस्पृश्य जातियों द्वारा चलाए गये आंदोलन, सरकारी प्रयत्न, संवैधानिक प्रयत्न, शिक्षा संबंधी सुविधाएँ, विधान मंडलों एवं पंचायतों में प्रतिनिधित्व, नौकरियों में प्रतिनिधित्व, विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में दलित-वर्ग की सरकारी उन्नति हेतु रखे गए विभिन्न प्रावधान, नागरिक अधिकार संरक्षण कानून आदि मुद्दों की तर्क-संगत व्याख्या हमने प्रस्तुत की है।

उपर्युक्त मुद्दों के प्रकाश में हम कह सकते हैं कि दलित वर्ग की चिन्ता करना, दलितों की स्थिति पर चिंतन, दलितों की दयनीय, शोषित, दलित-स्थितियों के कारणों की पड़ताल, उनकी समस्याओं का विश्लेषण, उन पर थोपी गयी निर्योग्यताओं के खिलाफ चेतना जाग्रत करना, दलितों को अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट करना, उन्हें संगठित कर आवश्यकता पड़ने पर संघर्ष के लिए प्रेरित करना आदि मुद्दे दलित-विमर्श के अन्तर्गत आते हैं। दलित-विमर्श को जानने-समझने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि वर्णाश्रम-व्यवस्था अन्यायमूलक, शोषणमूलक, भारत को खंडित करने वाली तथा जातिवाद को बढ़ावा देनेवाली अतार्किक तथा अवैज्ञानिक व्यवस्था है। और इसी वर्णाश्रम व्यवस्था के कारण ही शूद्रों पर सामाजिक,राजनीतिक, धार्मिक,

आर्थिक निर्योग्यताएँ (disabilities) थोपी गयी बाद में जिनके बड़े ही अमानवीय दुष्परिणाम सामने आए। प्रारंभ में अस्पृश्यता नहीं थी। डॉ. बाबा साहब ने गहन अध्ययन के उपरान्त यह प्रस्थापित किया है कि भारत में लगभग ४०० ई. में गुप्त-राज्य के समय में अस्पृश्यता का समावेश हुआ है। इसे एक विडम्बना ही समझना चाहिए कि हमारे इतिहासकार इसी गुप्त समय की गणना स्वर्ण-युग के रूप में करते हैं। बहुत से दलित इस ''स्वर्णयुग'' को यदि ''सवर्णयुग'' कहते हैं तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह अस्पृश्यता बाद में दक्षिण के राज्यों में तो चरम सीमा को पहुँच गयी और उच्च-वर्ण के लोग शूद्रों की परछाइयों से भी कतराते थे, क्योंकि उनकी परछाई पड़ जाने मात्र से ये भ्रष्ट हो जाते थे। कोचीन सरकारी रिपोर्ट में इसे देखा जा सकता है।

दलित-विमर्श-यात्रा का प्रारंभ बौद्ध-धर्म के उदय के साथ होता है। उसके बाद सिद्धों, नाथों और निर्गुणिया संतों के काव्य में उसे लक्षित किया जा सकता है। यह अकारण नहीं है कि लगभग तमाम-तमाम सन्त निम्न जातियों से आये थे। बुद्ध के बाद दलित-विमर्श के महान उन्नायकों में कबीर आते हैं। आधुनिक काल में नवजागरण के सामाजिक, धार्मिक आंदोलनों के पश्चात् दलित-विमर्श एक नये ढंग से उभरता है। बीसवीं शताब्दी के दलितों के मसीहा डॉ. बाबा साहब आंबेडकर इस विमर्श को एक नयी दिशा प्रदान करते हैं। इस समूची सामाजिक-राजनीतिक जागृति की प्रक्रिया में गैर-दलित वर्ग के समझदार व प्रबुद्ध लेखकों, कवियों और नेताओं की सकारात्मक भूमिका को नकारना समुचित न होगा। हमें योग करना है, गुणा करना है, भागा नहीं करना, घटाना नहीं है।

दलित-विमर्श के प्रमुख नेताओं में गोपालराव हरिदेशमुख, महात्मा ज्योतिबा फुले, गोपाल गणेश आगरकर, महर्षि प्रो. अण्णा साहब कर्वे, श्रीमंत महाराजा सयाजीराव गायकवाड, गोपाल कृष्ण गोखले, महात्मा गाँधी, महर्षि विट्ठल रामजी शिंदे, वीर सावरकर, राजर्षि श्री साहूजी महाराज, कर्मवीर

भाउराव पाटिल, डॉ. बाबासाहब आंबेडकर, काशीराम जी आदि मुख्य हैं। इनमें डॉ. बाबा साहब आंबेडकर की भूमिका युगान्तकारी और शकवर्ती है। आजीवन वह दलितों और पिछड़ों के अधिकारों के लिए लड़ते रहे, इतना ही नहीं उन्होंने एक समृद्ध और संपन्न साहित्य भी दिया। जिसे हम आंबेडकरवादी साहित्य कह सकते हैं। उन्होंने अपने दलित भाइयों को संदेश दिया -''शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्षी बनो।''

महात्मा गाँधी और आंबेडकर में अनेक मुद्दों में विरोध होते हुए भी, महात्मा गाँधी ने अस्पृश्यता-निवारण के लिए जो किया है,उसे नकारा नहीं जा सकता है। आंबेडकर की विचारधारा और मार्क्सवाद में भी कुछ मुद्दों का अंतर है, पर समानताएँ अधिक हैं। महात्माजी ने स्वाधीनता-संग्राम के दौरान दलितों के लिए ''हरिजन'' शब्द का प्रयोग किया था,लेकिन आजादी के उपरांत संसद में हुई बहसों के फलस्वरूप अब 'हरिजन' शब्द को असंसदीय माना जाता है।

अस्पृश्यता-निवारण के संदर्भ में जो सुधार-आंदोलन हुए उनमें गैर-दलित जातियों के लोगों तथा संस्थाओं की भी बड़ी महती भूमिका रही है। स्वयं दलित नेताओं तथा उनके द्वारा प्रस्थापित संस्थाओं की बड़ी महती भूमिका रही है। स्वतंत्रता-पूर्व ब्रिटिश राज्य में तथा स्वतंत्रता के पश्चात् सरकारी प्रयत्नों से भी काफी कुछ परिवर्तन हुआ है, तथापि इस संदर्भ में अभी तक १० प्रतिशत काम हुआ हो, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि दूर-दराज के गाँवों में दलितों का जीवन आज भी तिमिराच्छन्न दृष्टिगोचर होता है। कायदे-कानून हैं, पर वे कानून की पोथियों में ही सिमटकर रह गए हैं।

तृतीय अध्याय में ईसाई संदर्भ तथा मुस्लिम-संदर्भ विषयक कुछ अवधारणाओं को स्पष्ट किया गया है। मुसलमानों का आगमन ईसाइयों से पहले हुआ है, लेकिन प्रस्तुत प्रबंध में हमने ईसाई संदर्भ को पहले लिया है। ईसाई संदर्भ के अन्तर्गत भारत में यूरोप का आगमन, अंग्रेजों का आगमन, ईसाइयत का प्रचार-प्रसार, ईसाई धर्म का उद्भव, ईसाई धर्म और बौद्ध-धर्म

की तुलना ईसाई धर्म के कुछ बुनियादी सिद्धान्त, ईसाई धर्म की कुछ विशेषताएँ , ईसाई परिवार की संकल्पना, ईसाई परिवार की कुछेक विशेषताएँ, ईसाई समाज में विवाह-पद्धति, ईसाइयों में विवाह-विच्छेद (Divorce) की परंपरा, ईसाई विवाह में कुछ नये परिवर्तन जैसे मुद्दों की विस्तृत चर्चा की गई है ।

मुस्लिम-संदर्भ के अन्तर्गत मुस्लिमों की भारत तथा विश्व में जन-संख्या, हिन्दुओं की जन-संख्या, विश्व में इस्लाम का उदय, इस्लाम का क्षिप्र प्रसार, अरब और इस्लाम का भारत से संपर्क, भारत पर मुस्लिम आक्रमण, सल्तनत का समय, गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयदवंश और लोदी वंश, मुगल-समय(सन् १५२६-१८५७), बाबर, हुमायूं, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब तथा अन्य मुगल बादशाह, मुस्लिम शासन के दौरान के प्रभावशाली व्यक्तित्वों में अमीर खुसरो, निजामुद्दीन चिश्ती,कबरी, नानक, दादू, गुरु तेग बहादुर, गुरु गोविंद सिंह, छत्रपति शिवाजी, राणा प्रताप आदि की चर्चा, हिन्दू-मुस्लिम समरसता और गंगा-जमुनी संस्कृति, इस्लाम धर्म, इस्लाम की कतिपय विशेषताएँ, मुस्लिम-विवाह, मुस्लिम-विवाह की कतिपय शर्तें, मुस्लिम-विवाह में महेर या स्त्रीधन, मुस्लिम-विवाह के भेद, मुसलमानों में विवाह-विच्छेद अर्थात् तलाक, तलाक के प्रकार, तलाक-विषयक कुछ अधिनियम, मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम १९३९, मुस्लिम-परिवार की विशेषताएँ , संस्कारों की प्रधानता , सतवाँ, अकीका, चिल्ला, बिस्मिल्ला, खतना, निकाह, मैयत आदि संस्कार जैसे मुस्लिम-सभ्यता,संस्कृति और समाज से सम्बद्ध मुद्दों की विस्तृत व विश्लेषणात्मक पड़ताल की है ।

अध्याय के समग्रावलोकन से यह कहा जा सकता है कि यूरोपीय प्रजा व्यापार तथा ईसाइयत के प्रचार हेतु भारत की ओर प्रवृत्त हुई । सन् १४९८ में वास्को-डी-गामा ने भारत आने के समुद्री रास्ते की खोज की । प्रारंभ में फिरंगी, फ्रेंच और अंग्रेजों के बीच भारत पर अपने अधिकार को लेकर

संघर्ष होते रहे, लेकिन अन्ततः अंग्रेज उसमें सफल रहे। अंग्रेज व्यापारियों के साथ-साथ मिशनरी धर्म-प्रचारक भी आये थे और वे लगातार इसाइयत का प्रचार-प्रसार भारत के उपेक्षित लोगों में कर रहे थे। यदि हम ईसाई धर्म के उद्भव की बात करें तो संसार में तीन धर्म सबसे ज्यादा प्राचीन हैं- हिन्दू धर्म, जरथ्रुस्त धर्म और यहूदी धर्म। इनमें से प्रथम दो धर्म आर्यों के बीच उत्पन्न हुए और तीसरा यहूदी धर्म सामी जातियों के बीच उद्भवित हुआ। सामी जाति घनघोर मूर्तिपूजक थी। इस मूर्तिपूजा को त्यागने का प्रथम उपदेश हजरत इब्राहिम ने दिया जिनको यहूदी परंपरा में आदि पयगम्बर माना जाता है। ईसाई धर्म के प्रवर्तक हजरत ईसा हैं और उसका धर्मग्रन्थ बाइबिल है। बाइबिल के दो भाग हैं- पुरानी बाइबिल (Old Testament) और नई बाइबिल (New Testament)। पुरानी बाइबिल हजरत दाऊद और मूसा द्वारा कही गयी है, जबकि नयी बाइबिल हजरत ईसा द्वारा। इन दोनों के बीच जो संबंध है, वह बहुत-कुछ वेद और उपनिषदों जैसा है। यहूदी लोग नयी बाइबिल को नहीं मानते। ठीक उसी तरह इसाइयों का विश्वास पुरानी बाइबिल में नहीं है। यहाँ एक तथ्य की ओर हमारा ध्यान जाता है कि बौद्ध-धर्म और ईसाई धर्म में भी बहुत कुछ साम्य है। जिस प्रकार बौद्धधर्म वैदिक धर्म की कर्मकाण्डीय जटिलता के विरोध में आया, ठीक उसी तरह ईसाई धर्म यहूदी धर्म के विरोध में आया है। ईसाई धर्म आगे चलकर दो भागों में विभक्त हुआ- कैथोलिक एवं प्रोटेस्टण्ट, किंतु दोनों की आत्मा अविभक्त है। ईसाई धर्म अपने अनुयायियों को दस आदेशों का पालन करने के लिए कहता है। ये आदेश दया, प्रेम, करुणा, क्षमा, समानता तथा भाईचारे के सिद्धांतों पर आधारित है। ईसाई धर्म की कतिपय विशेषताओं में एकेश्वरवाद, ईसामसीह में विश्वास, आत्मा की पवित्रता, त्रियकवाद, चर्च की सत्ता, पाँच धार्मिक अनुष्ठानों में विश्वास, मूर्तिपूजा का विरोध, समानता तथा भ्रातृत्व आदि को परिगणित किया जा सकता है।

अब यदि ईसाई परिवार की बात करें तो भारत में चार प्रकार के

ईसाई-परिवार पाए जाते हैं-१.वे जो यूरोप-निवासियों की भारत में बसी हुई संतानों से आते हैं,२. वे जो हिन्दुओं तथा मुसलमानों से धर्म-परिवर्तन द्वारा बने ईसाइयों तथा उनकी संतानों से आते हैं, ३. वे जो प्रथम तथा द्वितीय प्रकार के ईसाइयों की मिश्रित संतानों से आते हैं और ४. वे जो ऐसे आदिवासियों से बने हैं जो धर्म-परिवर्तन द्वारा ईसाई बन गए हैं। अब ईसाई परिवार की विशेषताओं पर दृष्टिपात करें तो उनमें निम्नलिखित विशेषताएँ नजर आयेंगी- १. पितृसत्तात्मक व्यवस्था २. सम्मिलित आय का अभाव ३. सम्मिलित संपत्ति का अभाव ४. परिवार का लघु आकार ५. वैयक्तिक आधार ६. समानता के सिद्धान्त पर बल, ७. अपेक्षाकृत स्त्रियों की बेहतर स्थिति आदि-आदि।

ईसाइयों की विवाह-प्रथा अधिक जटिल नहीं है। वर-वधू का विवाह चर्च में फादर करवाते हैं। यद्यपि ईसाई धर्म विवाह-विच्छेद की अनुमति नहीं देता, तथापि परिवार के वैयक्तिक आधार के कारण, अन्य धर्मों की तुलना में उसमें विवाह-विच्छेद सर्वाधिक रूप से पाया जाता है। ईसाई विवाह-पद्धति में अनेक नये परिवर्तन आ रहे हैं ओर उसका लचीलापन (Flexibility) और भी बढ़ रहा है। ईसाई समाज की एक अच्छी बात यह है कि उसमें बाल-विवाह नहीं होते और लड़का जब तक आर्थिक दृष्टिया से आत्मनिर्भर नहीं हो जाता उसका विवाह भी नहीं होता है। हिन्दुओं के सवर्ण तबके ने इस बात को ईसाइयों से ग्रहण किया है। इसे ईसाई प्रभाव कहा जा सकता है।

अब मुस्लिम-संदर्भ पर विचार करें तो ज्ञात होता है कि भारत में उनकी कुल जनसंख्या ११% है। मुस्लिम धर्म के स्थापक हजरत मुहम्मद पैगम्बर है। पूर्व-चर्चित ईसाई धर्म की भाँति इस्लाम भी यहूदी धर्म से निःसृत हुआ है। हजरत मुहम्मद पैगम्बर साहब हजरत मुहम्मद इब्राहीम के छोटे बेटे इस्माइल के वंश में हुए हैं, और हजरत दाऊद, मूसा और ईसा ये तीनों पैगम्बर हजरत इब्राहिम के बड़े बेटे हजरत इसहाक के खानदान में हुए हैं।

अभिप्राय यह कि दोनों धर्म के पैगम्बर मूलतः हजरत इब्राहिम की वंशपरंपरा में ही आते हैं, जिनको यहूदी परंपरा में प्रथम पैगम्बर माना गया है।

इस्लाम अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है "शान्ति में प्रवेश करना" अतएव उसका लाक्षणिक अर्थ होगा वह धर्म जिसके द्वारा मनुष्य भगवान की शरण लेता है तथा मनुष्यों के प्रति अहिंसा एवं प्रेम का बर्ताव करता है। इस्लाम धर्म का मूल मंत्र है- "ला इलाह इल्लल्लाह मुहम्मदु रसूल्लाह", अर्थात् अल्लाह के सिवा और कोई पूजनीय नहीं है तथा मुहम्मद उनके रसूल हैं। मुसलमानों का धार्मिक ग्रंथ कुरान है, जिसमें प्रत्येक मुसलमान के लिए निम्नलिखित पाँच धार्मिक कृत्य निर्धारित किए गए हैं- १. कलमा पढ़ना २. नमाज़ पढ़ना ३. रोज़ा रखना ४. जकात (दान) देना ५. हज़ करना।

इस्लाम के आरंभिक खलीफा वीर, उदार, न्यायी और विवेक-संपन्न थे, परन्तु भारत पर आक्रमण करने वाले मुसलमान दूसरे प्रकार के थे। वे अधिक कट्टर और धर्मान्ध थे। मुहम्मद गोरी द्वारा पृथ्वीराज चौहान पराजित होता है और यहीं से भारत में मुस्लिम सत्ता का प्रारंभ होता है। सन् १२०६ से सन् १५२६ ई. तक का मुस्लिम शासन सल्तनत युग कहलाता है, और सन् १५२६ से सन् १८५७ ई. तक के कालखंड को मुगल समय कहा जाता है। इस कालखंड में जो प्रभावशाली व्यक्तित्व हुए उनका उल्लेख हम कर चुके हैं।

इस्लाम की विशेषताओं में एकेश्वरवाद, पैगम्बरीय परंपरा, समानता और बिरादरी की भावना, मूर्तिपूजा का विरोध, पूर्वजन्म की अवधारणा में अविश्वास, पाँच धार्मिक कृत्यों के पालन की अनिवार्यता- कलमा पढ़ना, रोज़ा रखना, नमाज़ पढ़ना, जकात देना और हज़ करना, ईश्वर की अधीनता में विश्वास प्रभृति की गणना कर सकते हैं। मुस्लिम परिवार की विशेषताओं में हम निम्नलिखित को रेखांकित कर सकते हैं-१. संयुक्त परिवार पद्धति, २. पुरुष प्रधान परिवार, पद्धति ३. पारिवारिक स्थिति में असमानता ४. बहुपत्नीत्व

प्रथा ५. पर्दा प्रथा ६. परिवार में धार्मिक आधार की केन्द्रीयता ७. स्त्रियों की निम्न स्थिति ८. परंपराओं की प्रधानता और ९. संस्कारों की प्रधानता। मुस्लिम समाज में सतवाँ, अकीका, चिल्ला, बिसमिल्ला, खतना, निकाह और मैयत आदि सात संस्कारों का विशेष महत्व है। ध्यान रहे ये सात प्रकार के संस्कार सभी मुसलमानों के लिए हैं, क्योंकि हिन्दुओं में जो सोलह संस्कार होते हैं वे सभी के लिए नहीं हैं, उनमें से कुछ संस्कारों से दलित या शूद्र जातियों को वंचित रखा गया है।

चतुर्थ अध्याय में शैलेश मटियानी की दलित-संदर्भ से युक्त कहानियों का समीक्षात्मक ढंग से विश्लेषण किया गया है। इन कहानियों को अध्ययन की सुविधा के लिए हमने दो वर्गों में विभक्त किया है- (अ) कुमाऊँ के परिवेश पर आधारित कहानियाँ और (ब) नगरीय परिवेश पर आधारित कहानियाँ। कुमाऊँ के परिवेश पर आधारित दलित-संदर्भ की जो कहानियाँ हैं उनमें ''घुघुतिया त्यौहार'', ''सतजुगिया आदमी'', नंगा, प्रेतमुक्ति, चिट्ठी के चार अक्षर, लाटी, लीक, नेताजी की चुटिया, भँवरे की जात, बर्फ की चट्टानें, जिबुका आदि को उल्लेखनीय कहा जा सकता है। नगरीय परिवेश पर आधारित दलित-संदर्भ की कहानियों में चील, पत्थर, प्यास, महाभोज, गोपुली गफूरन, मिट्टी, दो दुःखों का एक सुख, एक कोप चा : दो खारी बिस्किट, हत्यारे, अहिंसा, विट्ठल, दैट माय फादर वेलजी, फर्क बस इतना है, जिसकी जरूरत नहीं थी आदि कहानियों को लिया गया है।

इन कहानियों के आधार पर कहा जा सकता है कि मटियानी जी की दलित-विमर्श विषयक दृष्टि तटस्थ व पूर्वाग्रह रहित है। इनमें एक तरफ जहाँ दलित शोषण की बात है, वहाँ दूसरी तरफ आजादी के बाद इस वर्ग में जो नयी चेतना उभरकर आयी है उसका भी चित्रण मिलता है। कुमाऊँ प्रदेश के जनजीवन के साथ यहाँ उस मिट्टी की सोंधी खुशबू भी है। इनमें कई ऐसे दलित पात्र मिलते हैं जो मानवीय मूल्यों से मालामाल हैं, साथ ही कहीं उनमें प्रचलित अंधविश्वासों का भी तटस्थ चित्रण मिलता है। नगरीय परिवेश की

कहानियों में चील, महाभोज, गोपुली गफूरन, मिट्टी, दो दुःखों का एक सुख, हत्यारे आदि कहानियाँ इलाहाबाद, अलमोड़ा आदि नगरों से सम्बद्ध हैं। नगरीय परिवेश में जहाँ मुंबई का परिवेश है उन कहानियों में हमने मुंबई के उस जीवन को भी दलित-जीवन के अन्तर्ग ही रखा है जो झोंपड़पट्टियों, फुटपाथों और पाईपों में पलता है। इनमें चोर, भिखारी, पाकेटमार, दादा, मवाली, गुण्डे सरीखे लोगों में भी कहीं-कहीं मानवता के दिये झिलमिलाते नजर आते हैं। इन कहानियों में मटियानी जी ने जहाँ हमारे तथाकथित ऊँचे, संपन्न, अभिजात वर्ग के भीतर के खोखलेपन को उद्घाटित किया है, वहाँ मुंबई के फुटपाथों और झोंपडपट्टियों में जी रहे लोगों के ऊँचे मानवीय मूल्यों को उकेरा है। इन कहानियों में हमें मुख्यतः तीन प्रकार के पात्र मिलते हैं- ऐसे पात्र जिनमें कहीं बहुत भीतर खंगालने पर मुनष्य होने का अहसास बाकी है, ऐसे पात्र जो मनुष्य होने की चेतना खो चुके हैं और लाख गरीबी के बावजूद कुछ ऐसे नारी पात्र भी मिलते हैं जो अपने मान-सम्मान और ''मरजाद'' के लिए जूझ रही है। ऐसी जुझारू और जीवट वाली नारियों में शिवरती, गनेशी, बिन्दा ओर कृष्णाबाई आदि को ले सकते हैं। संक्षेप में हम यहाँ जीवन के कीचड़ में खिले हुए कमलों के दर्शन कर सकते हैं।

पंचम अध्याय में ईसाई-संदर्भ से युक्त कहानियों को अध्ययन के निकष पर चढ़ाया गया है जिनमें मिसेज ग्रीनवुड, झुरमुट, दीक्षा, चुनाव, नीत्शी, छाक, कोहरा, दैट माय फादर वेलजी, बित्ताभर सुख आदि कहानियों को उल्लेखनीय कहा जा सकता है। इन ईसाई-संदर्भ की कहानियों में प्रायः धर्म-परिवर्तन की प्रक्रिया देखने में मिलती है, क्योंकि कुमाऊँ प्रदेश में भी यह प्रवृत्ति काफ़ी जोरों पर चलती है। स्वयं मटियानी जी के पिताजी ने एक दूसरी स्त्री के प्रेम के चक्कर में ईसाई धर्म अंगीकृत किया था। कुमाऊँ प्रदेश में हिन्दुओं में यह जो प्रवृत्ति मिलती है, उसके दो कारण हैं- निम्नजातियों-उच्चवर्ण की जातिगत कट्टरता, ऊँच-नीच का संस्तरण, निम्नजाति के लोगों पर अत्याचार, अन्याय और बात-बात में उनका होनेवाला अपमान आदि

धर्मान्तरण का मुख्य मुद्दा है, तो ऊँची जाति के लोग प्रायः अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम आदि के कारण धर्मपरिवर्तन करते हैं। यदि हिन्दुओं में यह जातिगत कट्टरता और जकड़बन्दी न होती तो ऐसा नहीं होता।

मटियानी जी की कहानियों में जो ईसाई चरित्र मिलते हैं उनकी प्रायः छः कोटियाँ है-१. विशुद्ध रूप से ईसाई, जैसे मिसेज ग्रीनवुड, मि. ग्रीनवुड, मि. राबर्ट आदि, २. ऊँची जाति के हिन्दू जो प्रायः प्रेम-विवाह के कारण ईसाई धर्म अंगीकार करते हैं, जैसे फादर परांजपे, मि. धरणीधर उप्रेती (झुरमुट कहानी के मि. डी.डी.), ''चुनाव'' कहानी का मि. क्रिस्टी आदि आदि, ३. निम्नजाति के लोग जैसे मिसेज कैथरीन, मि. गुडविल आदि ४. मध्यवर्गीय जातियों जैसे सुप्रिया मसी, सुमित्रा, पादरी जानसन चौहान, उनका भतीजा विल्सन चौहान आदि ५. पुराने ईसाई जो पिछली कई पीढ़ियों से ईसाई हैं, जैसे सुप्रिया मसी, बिल्सन चौहान आदि ६. नये ईसाई जो अभी हाल ही में ईसाई हुए हैं, जैसे - फादर परांजपे, डी.डी., क्रिस्टी आदि।

इन कहानियों में ईसाई धर्म में रसे-बसे और पगे हुए चरित्र भी हैं, तो कुछ पाखंडी ओर ढोंगी किस्म के चरित्र भी मिलते हैं। रसे-बसे और पगे चरित्रों में ईसाई धर्म की उदात्ता, करूणा, दया, क्षमा आदि गुण प्राप्त होते हैं। ऐसे चरित्रों में मिसेज ग्रीनवुड, फादर परांजपे, सुप्रिया मसी आदि चरित्र मिलते हैं। पाखंडी ओर ढोंगी चरित्रों में सिस्टर सुशीला ज्होन (नीत्शी) पादरी जानसन (चुनाव), मिसेज गुडविल (चुनाव) आदि की गणना कर सकते हैं। इन कहानियों में कुछ ऐसे पात्र भी मिलते हैं जिनके साथ धर्म-वंचना हुई है, अर्थात् जिनको धर्म के नाम पर छला गया है। ऐसे पात्रों में 'चुनाव' कहानी के कृष्णानंद (मिस क्रिस्टी), मि. गुडविल, 'नीत्शी' कहानी की नीत्शी आदि है। इन कहानियों में ईसाई धर्म की सूक्तियाँ, रीति-रिवाज और विशिष्ट ईसाई शब्दावली का प्रयोग मिलता है। शोध-प्रबंध की योजना के अनुरूप छठे अध्याय में हमने मटियानी जी की मुस्लिम-संदर्भ की कहानियों को विश्लेषित किया है। इन कहानियों में मैमूद, रहमतुल्ला, इल्बूमलंग,

गरीबुल्ला, पत्थर, गोपुली गफूरन, एक कप चा : दो खारी बिस्किट, दो दुःखों का एक सुख, इल्लेस्वामी, हलाल, सिने-गीतकार आदि कहानियों को अध्ययन के लिए चुना गया है। अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि मटियानी जी भी प्रेमचंद स्कूल के लेखक हैं, अतः उनके कथा साहित्य में हमें मुस्लिम समाज की उपस्थिति मिलती है। 'मैमूद', 'रहमतुल्ला', ''पत्थर'', ''इल्बूमलंग'' आदि कहानियाँ मुस्लिम-सभ्यता और तहजीब की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनमें मुस्लिम पात्रों के नाम, उनका सामाजिक परिवेश, उनके रीति-रिवाज, उनकी मान्यताएँ, उनकी भाषा, मुसलमानी बोली और लहजा, रोजा रखना, कलमा पढ़ना, नमाज पढ़ना, खतना कराना, हलाल गोश्त की विभावना, निकाह करना, मौसेरी-फुफेरी बहनों से शादी, एक से ज्यादा बीबियाँ, मुसलमानी पहनावा, मुसलमानी खाना, कबाब, मटन-पुलाव,मटन बिरयानी, चिकन बिरयानी, गोश्त के कोफते, मुसलमान स्त्री-पुरुषों की गोश्तखोरी ये तमाम बातें हमें मुस्लिम संदर्भ से जोड़ती हैं और इसका यथार्थ आलेखन व आकलन वही लेखक कर सकता है जिनका इस परिवेश से गहरा नाता रहा हो। इन कहानियों में हमें कहीं-कहीं धर्मान्तरण की प्रवृत्ति मिलती है, लेकिन यह धर्मान्तरण मुस्लिम से हिन्दू का नहीं, बल्कि हिन्दू से मुस्लिम का मिलता है। इसमें कहीं भी जबरदस्ती या जोरों-जुल्म नहीं है, बल्कि किसी-न-किसी प्रकार की व्यक्ति की लाचारदर्जी रही है। यह धर्मान्तरण की प्रवृत्ति हमें निम्न जातियों में सविशेष मिलती है। एक बात और भी गौरतलब है कि मुसलमानों में जहाँ संपन्नता और समृद्धि है, वहाँ औलाद का अभाव है, लेकिन जहाँ गरीबी है, वहाँ बच्चों की भरमार है। इन कहानियों में कहीं-कहीं मुस्लिम वेश्याएँ मिलती हैं, किन्तु अधिकांशतः वे मूल रूप से हिन्दू है। तथापि मुस्लिम परिवारों की गरीबी भी इसमें कारणभूत हैं। गरीबी और अशिक्षा मुस्लिम-समाज की दो महामारियाँ हैं। यह भी एक तथ्य है कि मुसलमान प्रायः अच्छे कारीगर और मिकेनिक होते हैं।

सप्तम अध्याय में हमारे शोधप्रबंध में विश्लेषित संदर्भ-त्रयी के आधार

पर उन-उन कहानियों में पायी जानेवाली समस्याओं का आकलन किया है। ये समस्याएँ सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक प्रकार की हैं। ऐसे कुल मिलाकर लगभग बीस समस्याओं को आकलित व विश्लेषित किया गया है - जिनमें निम्नलिखित है-१. दरिद्रता या गरीबी की समस्या २. जातिगत नफरत की समस्या ३. आवास की समस्या ४.जातिवाद की समस्या ५. धर्मान्तरण की समस्या ६. वेश्या समस्या ७. बीमारियों की समस्या ८. ज्यादा संतानों की समस्या ९. निम्न जातियों के लोगों के यौन-शोषण की समस्या १०. हैसियत से ज्यादा खर्च करने की समस्या ११. निम्नजातियों के अपमान की समस्या १२. अंध-विश्वासों की समस्या १३. जाति-बिरादरी के डर की समस्या १४. बच्चों के यौन शोषण की समस्या १५. बाल-मजदूरी की समस्या १६. बचपन में ही अनाथ हो जाने की समस्या १७. बच्चों से भीख मंगवाने की समस्या १८. बच्चों से अवैध काम करवाने की समस्या १९. धर्म-वंचना की समस्या २०. अन्तर्जातीय विवाह की समस्या आदि। इनके अतिरिक्त अस्पृश्यता की समस्या, फिल्मी गीतों के भोंडेपन की समस्या, वर्ली-मटके और जुए की समस्या, गलत राजनीति के शिकार की समस्या जैसी समस्याओं पर भी विचार किया गया है।

प्रत्येक अध्याय के अंत में समग्रावलोकन की प्रक्रिया द्वारा मंथन करके निष्कर्ष दिए गए हैं। शोध-प्रबंध में संदर्भानुक्रम या संदर्भ-संकेत प्रस्तुत करने के दो मुख्य तरीके हैं- एक वह जिसमें किसी पृष्ठ-विशेष के नीचे ही एक रेखा खींचकर संदर्भ-संकेत दिया जाए, और दूसरा तरीका वह है जिसमें समूचे अध्याय में क्रमिक नंबर देते हुए उन सभी संदर्भों को अध्याय के अंत में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रबंध में हमने दूसरी विधि का प्रयोग किया है,क्योंकि वह टंकण इत्यादि में अधिक सुविधाजनक रहती है। शोध-प्रबंध के अंत में ''संदर्भिका'' (Bibliography) को अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है। इसमें उपजीव्य या आधारभूत ग्रन्थ-सूची के अतिरिक्त अन्य सहायक ग्रंथों तथा पत्र-पत्रिकाओं की सूची विभिन्न परिशिष्टों के अन्तर्गत

रखने का उपक्रम रहा है ।

अन्ततः प्रबंध विद्वज्जनों के सम्मुख है । अपनी सीमाओं और मर्यादाओं का मुझे ज्ञान है, तथापि यथा शक्ति-मति यह कार्य मैंने संपन्न किया है । शुभाशंसा से किया गया कोई भी कार्य निरर्थक नहीं होता और उसमें कुछ भी तो सार्थक और उपादेय होता है । इस कार्य के उपरान्त मेरी शोध-दृष्टि तथा साहित्यिक-समझ (Literary conscience) में थोड़ा-सा ही सही लेकिन इजाफा हुआ होगा ऐसा मानना अकारण न होगा ।

कविकुलगुरु कालिदास अपने "मालविकाग्निमित्रम्" नाटक के प्रथम अंक में नाट्याचार्य गणदास द्वारा एक सूक्ति कहलवाते हैं -

"लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तिक्षमाणस्य परेण निन्दाम् ।
यस्यागमः केवल जीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ।।"

अर्थात् जो लोग अध्यापक पद प्राप्त कर लेने के उपरान्त शास्त्रार्थ या वाद-विवाद या बहसों से कतराते हैं, तथा दूसरों द्वारा की गयी निन्दा को सहन कर लेते हैं और केवल अपना तथा परिवार का पेट पालने के लिए अध्यापन का कार्य करतें हैं, ऐसे लोग विद्वान नहीं अपितु ज्ञान बेचने वाले बनिये होते हैं । मेरा यह कार्य स्वयं को विवादक्षम बनानेकी दिशा में उठाया हुआ एक कदम है । सच्ची और उत्कृष्ट कला प्रश्नों को उकेरती है, और साहित्य के क्षेत्र में किया गया शोधकार्य भी कला के क्षेत्र में ही आता है, अतः मेरा यह शोधकार्य यदि प्रश्नों को उकेर सका,नयी बहसों को जन्म दे सका तो मैं स्वयं को कृतार्थ समझूंगा ।

प्रथमदर्शी शोधकार्य से संतुष्टि मान लेनेवाले कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि किसी एक लेखक या कवि पर ज्यादा कार्य नहीं हो सकता, लेकिन यह सही नहीं है । लेखक या कवि और उसका रचना-संसार तो अनेक संभावनाओं का आगार होता है, अगर वह प्रेमचंद, निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन, शैलेश मटियानी-सी साहित्यिक बुलंदियों को छूते हों, तो उनके विभिन्न आयामों को लेकर नये-नये कार्य हो सकते हैं । महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय में

प्रोफेसर पारुकान्त देसाई के मार्गदर्शन में मटियानी जी पर दो-तीन शोध कार्य हुए हैं। एक तो उनके ''कथा साहित्य'' को लेकर प्रथम कार्य डॉ. सलीम वोरा (प्रज्ञाचक्षु शोधछात्र) ने किया। उसके उपरान्त मटियानी जी की कहानियों में नारी के विभिन्न रूपों को लेकर डॉ. सुषमा शर्मा का शोध-कार्य है। अभी हाल ही में मटियानी जी के उपन्यासों की भाषा को लेकर एक शोधकार्य श्री महेश रबारी का है। और उसके उपरान्त मेरा यह कार्य जो मटियानी जी की कहानियों में दलित, ईसाई और मुस्लिम संदर्भ को लेकर है।

परन्तु अभी भी इस दिशा में शोधकार्य की गुंजाइश है। डॉ. सलीम वोरा का कार्य सन् १९९१ में संपन्न हुआ था और मटियानी जी का निधन सन् २००१ में हुआ। मटियानी जी आखिर तक लिखते रहे हैं, अतः उनके समूचे कथा-साहित्य का पुनर्मूल्यांकन हो सकता है। कथा-साहित्य के अलावा मटियानी जी का विपुल साहित्य उपलब्ध होता है जिसमें उन्होंने देश की ज्वलंत समस्याओं को उठाया है उसे लेकर एक स्वतंत्र शोध-कार्य की गुंजाइश है। उनके ''लोककथा-साहित्य'' वाले पक्ष को भी लिया जा सकता है। उनके नगरीय परिवेश को लेकर अलग से कार्य हो सकता है। कुमाऊँ प्रदेश की लोकसंस्कृति के संदर्भ में भी कार्य हो सकता है। मटियानी जी जब ''रसदशा'' वाली स्थिति में होते हैं तब उनका गद्य स्वयमेव सूक्तियों का रूप लेने लगता है, उसे लेकर भी कार्य हो सकता है। समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, भाषा विज्ञान, शैली विज्ञान जैसे शास्त्रों को आधार बनाकर सूक्ष्म प्रकार का शोधकार्य हो सकता है।

हमारेयहाँ कहा गया है- ''वादे वादे तत्व जायते।'' हमारा भी इस सूत्र में विश्वास है। मटियानी जी के साहित्य में और भी कई अनचिह्नित और अशोधित पक्ष ओर आयाम हो सकते हैं। मेरा यह शोधकार्य उस महान कथाकार को यत्किंचित भी समझने में सहायक होगा और भविष्यत् अनुसंधित्सुओं को प्रकाश की एक किरण भी उपलब्ध करा सकेगा तो मैं

अपने श्रम को सार्थक समझूंगा।

अन्त में वाणी के गौरव के कवि श्री भवानी प्रसाद मिश्र (भवानीदादा) की निम्नलिखित काव्य-पंक्तियों के साथ विरमता हूँ-

"वाणी की दीनता
अपनी में चीन्हता !
कहने में अर्थ नहीं
कहना पर व्यर्थ नहीं
मिलती है कहने में
एक तल्लीनता !"

*